1965G Shaurseni Agam literature

(In Sanskrit-Prakrat Vyakan and Kosh Parampara, Possibly in Celebration of the 100th Birth centanary of Kalguni)

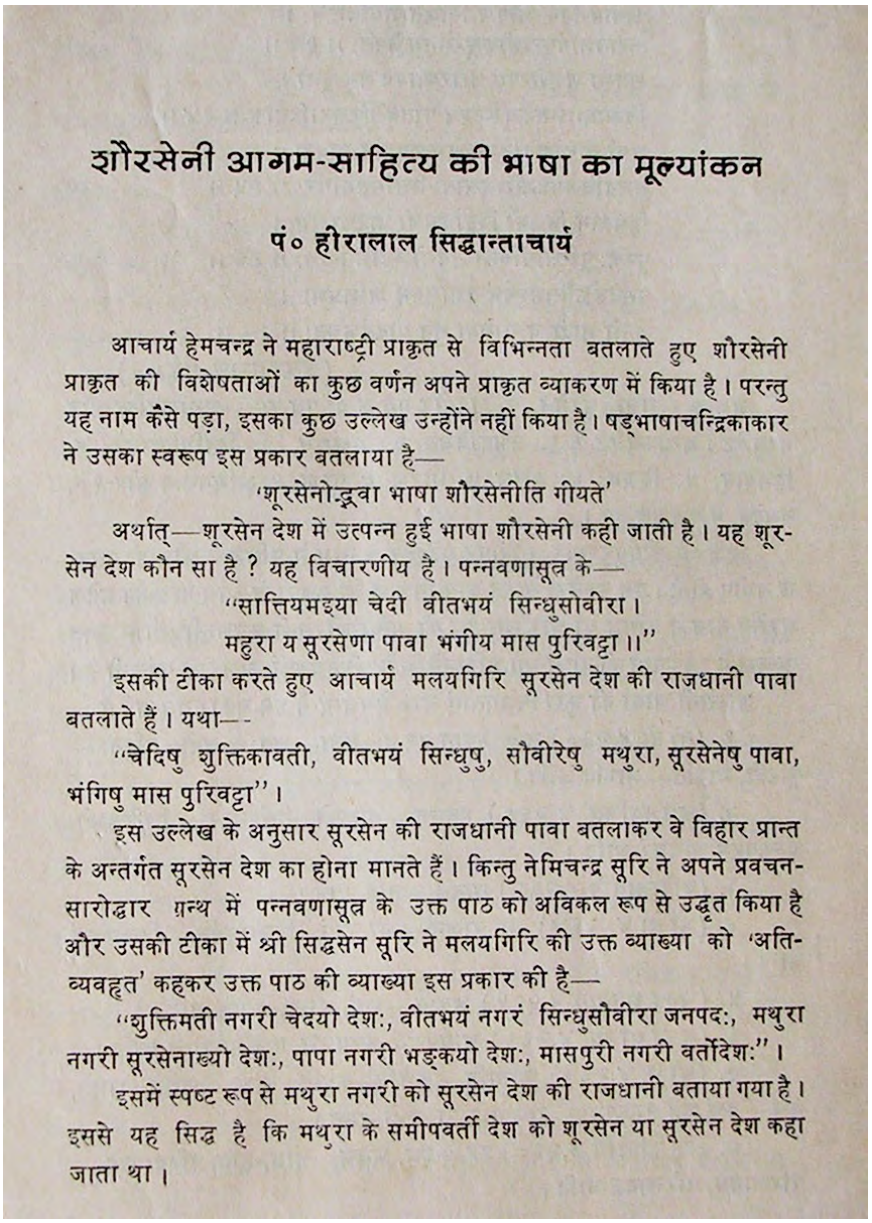

शौरसेनी आगम-साहित्य की भाषा का मूल्यांकन

पं० हीरालाल सिद्धान्ताचार्य

आचार्य हेमचन्द्र ने महाराष्ट्री प्राकृत से विभिन्नता बतलाते हुए शौरसेनी प्राकृत की विशेषताओं का कुछ वर्णन अपने प्राकृत व्याकरण में किया है। परन्तु यह नाम कैसे पड़ा, इसका कुछ उल्लेख उन्होंने नहीं किया है। षड्भाषाचन्द्रिकाकार ने उसका स्वरूप इस प्रकार बतलाया है—

'शूरसेनोद्भवा भाषा शौरसेनीति गीयते'

अर्थात्—शूरसेन देश में उत्पन्न हुई भाषा शौरसेनी कही जाती है। यह शूरसेन देश कौन सा है ? यह विचारणीय है। पन्नवणासूत्र के—

"सात्तियमइया चेदी वीतभयं सिन्धुसोवीरा।
महुरा य सूरसेणा पावा भंगीय मास पुरिवट्टा ।।"

इसकी टीका करते हुए आचार्य मलयगिरि सूरसेन देश की राजधानी पावा बतलाते हैं। यथा—

"चेदिषु शुक्तिकावती, वीतभयं सिन्धुषु, सौवीरेषु मथुरा, सूरसेनेषु पावा, भंगिषु मास पुरिवट्टा"।

इस उल्लेख के अनुसार सूरसेन की राजधानी पावा बतलाकर वे विहार प्रान्त के अन्तर्गत सूरसेन देश का होना मानते हैं। किन्तु नेमिचन्द्र सूरि ने अपने प्रवचनसारोद्धार ग्रन्थ में पन्नवणासूत्र के उक्त पाठ को अविकल रूप से उद्धृत किया है और उसकी टीका में श्री सिद्धसेन सूरि ने मलयगिरि की उक्त व्याख्या को 'अतिव्यवहृत' कहकर उक्त पाठ की व्याख्या इस प्रकार की है—

"शुक्तिमती नगरी चेदयो देशः, वीतभयं नगरं सिन्धुसौवीरा जनपदः, मथुरा नगरी सूरसेनाख्यो देशः, पापा नगरी भङ्कयो देशः, मासपुरी नगरी वर्तोदेशः"।

इसमें स्पष्ट रूप से मथुरा नगरी को सूरसेन देश की राजधानी बताया गया है। इससे यह सिद्ध है कि मथुरा के समीपवर्ती देश को शूरसेन या सूरसेन देश कहा जाता था।

भ० अरिष्टनेमिके पूर्वजों में शूरसेन राजा हुए हैं, वे शौर्यपुर नगर के स्वामी थे। यथा—

अवार्य निज शौर्येण निर्जिताशेषविद्विषः ।
ख्यातशौर्यपुराधीशशूरसेनमहीपतेः ।। ९३ ।।
सुतस्य शूरवीरस्य धारिण्याश्च तनूद्भवौ ।
विख्यातोऽन्धकवृष्टिश्च पतिवृ' ष्टिर्नरादिवाक् ।। ९४ ।।
धर्मा वान्धकवृष्टेश्च सुभद्रायाश्च तुग्वराः ।
समुद्रविजयोऽक्षोभ्यस्ततः स्तिमितसागरः ।। ९५ ।।
हिमवान् विजयो विद्वानचलो धारणाह्वयः ।
पूरणः पूरितार्थीच्छो नवमोऽभ्यभिनन्दनः ।। ९६ ।।
वसुदेवोऽन्तिमश्चैवं दशाभूवन् शशिप्रभाः ।
कुन्ती माद्री च सोमेवा सुते प्रादुर्बभूवतुः ।। ९७ ।।
(उत्तर पुराण, पर्व ७०)

अर्थात्—राजा सूरसेन के शूरवीर पुत्र के दो पुत्र हुए—अन्धकवृष्टि और नरवृष्टि। अन्धकवृष्टि के १. समुद्रविजय, २. अक्षोभ्य, ३. स्तिमितसागर, ४. हिमवान्, ५. विजय, ६. अचल, ७. धारण, ८. पूरण, ९. अभिनन्दन और १०. वसुदेव, ये दश पुत्र हुए।

आज भी शौर्यपुर नगर सौरीपुर बटेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है और जो मथुरा के समीप ही है। इस उल्लेख से यह बात सिद्ध है कि मथुरा के आस-पास का प्रदेश शूरसेन नाम से प्रसिद्ध था और उस देश की भाषा शौरसेनी कहलाती थी। उक्त उल्लेख से इस भाषा की प्राचीनता अरिष्टनेमि से भी पूर्ववर्ती काल तक पहुंचती है।

शौरसेनी भाषा की कुछ विशेषताएं आ० हेमचन्द्र ने इस प्रकार बतलाई हैं—

१. (तो दो ४,२६०) त के स्थान पर द, यथा—ततः—तदो, पूरितः—पूरिदो, मारुति—मारुदि आदि।

२. (अधःक्वचित् ४,२६९) महान्तः—महन्दो, निश्चिन्तः—णिच्चिन्दो, अन्तःपुरम् अन्देउरं आदि।

३. (वादेस्तावति ४,२६२) तावत्—ताव, दाव।

४. (मो वा ४, २६४) भो राजन्—भो रायं, विजयवर्मन्—विजयवम्मं आदि।

५. (भवद् भगवतो ४,२६५) भवान्—भवं, भगवं, भयवं आदि।

६. (न वा र्यो य्यः ४,२६६) आर्यपुत्र—अय्यउत्त, पक्षे अज्जपुत्त आदि।

७. (थो धः ४,२६७) कथयति—कधेदि, कहेदि, नाथः—णाधो, णाहो, कथं—कधं कहं, राजपथः— राजपधो, राजपहो आदि।

८. (इह ह्योर्यस्य ४,२६८) इह—इध, भवथ —होध, होह, परियायध्वे—परित्तायध, परित्तायह आदि।

९. भुवो भः ४,२६९) भवति —भोदि, होदि, भुवदि, हुवदि, भवदि, हवदि आदि।

१०. (क्त्वः इय दूणो ४,२७१) भूत्वा—भविय, भोदूण, हविय, होदूण, पठित्वा—पढिय, पढिदूण, रन्त्वा—रमिया रन्दूण आदि।

११. (कृ —गमो डडुअः ४,२७२) कृत्वा, कडुअ, गडुअ, पक्षेकरिय, करिदूण, गत्वा—गच्छिय, गच्छिदूण आदि।

१२. (दि रि चे चोः ४,२७३) नयति —नेदि, ददाति—देदि, भवति—भोदि, होदि।

१३. (अतो देश्च ४,२७४) आस्ते —अच्छदि, अच्छदे, गच्छति—गच्छदि, गच्छेदे, करोति – किज्जदि, किज्जदे आदि।

१४. (भविष्यति स्सिः ४,२७५) भविष्यति—भविस्सिदि, करिष्यति—करिस्सिदि आदि।

१५. (तस्मात्तः ४,२७८) तस्मात्—ता।

संस्कृत नाटकों में प्राकृत गद्यांश प्रायः शौरसेनी भाषा में लिखे गए हैं। अश्वघोष, भास और कालिदास के नाटकों में तथा इनके परवर्ती नाटकों में प्रायः शौरसेनी के उदाहरण दिखाई देते हैं।

ऊपर जो हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण के सूत्र और नियम दिए गए हैं, प्रायः वे ही नियम, उनसे मिलते-जुलते सूत्र और प्रयोग वररुचि, लक्ष्मीधर और त्रिविक्रम आदि के प्राकृत व्याकरणों में भी पाए जाते हैं।

दण्डी, रुद्रट और वाग्भट आदि ने भी अपने ग्रन्थों में इस भाषा का उल्लेख किया है। भरत के नाट्यशास्त्र में भी सौरसेनी भाषा का उल्लेख इस प्रकार उपलब्ध है—

'नायिकानां सखीनां च सूरसेनाविरोधिनी' अर्थात् नायिका स्त्री और उनकी सखियों के लिए सौरसेनी का प्रयोग अविरोधी है।

इस प्रकार शौरसेनी या सौरसेनी भाषा की प्राचीनता और उद्गम स्थान ज्ञात हो जाने पर स्वभावतः ये प्रश्न उपस्थित होते हैं—

(१) क्या वे सब दिगम्बर आचार्य शूरसेन देश के ही निवासी थे, जिन्होंने कि अपने ग्रन्थों की रचना शौरसेनी में की है?

(२) यदि नहीं थे, तो फिर दि० कुन्दकुन्दाचार्य और नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती जैसे दक्षिण प्रान्त में जन्मे अनेक दि० आचार्यों ने अपने-अपने ग्रन्थों की रचना शौरसेनी प्राकृत में ही क्यों की?

(३) अथवा इसमें रचना करने का और कोई अन्य कारण विशेष रहा है, जिससे प्रेरित होकर प्रायः सभी दिगम्बर आचार्यों ने इसे अपनाया है?

उक्त प्रश्नों का समाधान करने के पूर्व यह ज्ञातव्य है कि भारतवर्ष में उत्तर से

दक्षिण तक जाने-आने का जो मध्य मार्ग था और जिसमें हिन्दुओं के परम उपास्य श्रीकृष्ण का जन्म हुआ, वह मथुरा नगरी इस उत्तरापथ और दक्षिणापथ के मध्य में पड़ती है। आज भी सुदूर दक्षिण के तीर्थयात्री जब उत्तर प्रान्तों के तीर्थों की यात्रार्थ निकलते हैं तो वे उत्तर के बदरीनारायण, गंगोत्री, और कैलाश की यात्रार्थ जाते-आते हुए मध्यवर्ती मथुरा में अवश्य उतरते हैं। इस आवागमन से आज भी दक्षिणवाली जैसे इस शूरसेन देश की राजधानी मथुरा की वर्तमान भाषा हिन्दी से परिचित हो जाते हैं, उसी प्रकार श्री कृष्ण के समय इस देश में बोली जाने वाली शौरसेनी से परिचित हो जाते थे।

अब हम ऊपर दिए गए प्रथम प्रश्न का समाधान करेंगे—दि० जैन ग्रन्थों, अनुश्रुतियों एवं दक्षिण में प्राप्त अनेक शिलालेखों से यह सिद्ध है कि आ० भद्रबाहु श्रुत-केवली के समय उत्तरभारत में १२ वर्ष का भयंकर दुष्काल पड़ा था। अपने निमित्तज्ञान से जब आ० भद्रबाहु ने यह जाना कि निकट भविष्य में ही भयंकर दुष्काल पड़नेवाला है तो अपने संघस्थ २४ हजार साधुओं को सम्बोधित करते हुए इस देश को छोड़कर सुदूर दक्षिण देश में चलने को कहा। उसमें से १२ हजार साधु तो उनके साथ दक्षिण देश को चले गए। किन्तु शेष १२ हजार इधर के श्रावकों के आग्रह और दुर्भिक्षकाल में भी भिक्षा-सुलभता के आश्वासन पर स्थूलभद्र के नेतृत्व में यहीं उत्तरभारत में रह गये।

उक्त परिप्रेक्ष्य में यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि जो साधु भद्रबाहु श्रुतकेवली के साथ दक्षिण प्रान्त में गये, वे प्रायः अधीतश्रुत एवं गीतार्थ थे, क्योंकि उस समय अंगों और पूर्वों का पठन-पाठन प्रचलित था। दक्षिण प्रान्त की तात्कालिक भाषाएं आज के समान ही उत्तर भारत की बोलचाल की भाषा से सर्वथा भिन्न थीं, फिर भी उधर के निवासी इधर के सूरसेन देश की बोली से आवागमन के कारण परिचित थे, इस कारण उक्त संघ के बहुश्रुतज्ञ साधुओं ने अपनी ही बोली सौरसेनी में उपदेश देना प्रारम्भ किया और समयानुसार ग्रन्थ रचना करना प्रारम्भ किया। अतः प्रारंभ में जिन आचार्यों ने शौरसेनी भाषा में ग्रन्थों की रचना की, उनमें अधिकतर उत्तर भारत के थे। इन हजारों साधुओं के दक्षिण प्रान्त में विचरण से, उपदेश देने से एवं सत्संग से दक्षिण देशवासी भली भांति परिचित हो गये थे, अतः दक्षिण देश में जन्मे हुए पीछे के दिगम्बर आचार्यों ने भी उसी सर्वाधिक समझी जाने वाली शौरसेनी भाषा में ही अपने ग्रन्थों की रचना की।

(२) इस प्रकार उक्त कथन से दूसरे प्रश्न का समाधान भी स्वयं ही हो जाता है। यतः पश्चाद्वर्ती ग्रन्थकारों की मूल-परम्परा आ० भद्रबाहु तक पहुंचती है, अतः उनके संघस्थ साधुओं की जो बोलचाल की भाषा थी, और जिसे कि आज शौरसेनी नाम से कहा जाता है, उसी में उन पीछे के दक्षिणी आचार्यों ने उत्तर

और दक्षिण के प्रान्तों में समझी जाने वाली शौरसेनी भाषा में ही अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना उचित समझा।

(३) तीसरे प्रश्न का समाधान यह है कि जैसे प्राकृत की जाखा मागधी, अर्धमागधी, या महाराष्ट्री आदि प्राचीन बोलचाल की प्राकृतिक (स्वाभाविक) बोलियों का संस्कार करके संस्कृत भाषा के रूप में तात्कालिक महर्षियों ने एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा का निर्माण किया, और जो समान रूप से बिना किसी परिवर्तन के सारे भारतवर्ष में समझी जाने लगी थी, उस संस्कृत भाषा के अति समीप या अत्यधिक साम्य होने के कारण परवर्ती दिगम्बर जैनाचार्यों ने शौरसेनी में अपने ग्रन्थों की रचना करना अधिक उपयोगी और श्रेयस्कर समझा।

यह बात इस नीचे दी जाने वाली तालिका से सहज में ज्ञात हो सकेगी—

प्राकृत	शौरसेनी	संस्कृत	प्राकृत	शौरसेनी	संस्कृत
अइसय	अदिसय	अतिशय	अइरेअ	अदिरेग	अतिरेक
अइहि	अतिहि	अतिथि	अईअ	अदीद	अतीत
अउअ	अयुद	अयुत	अंकुरिअ	अंकुरिद	अंकुरित
अइर	अचिर	अचिर	अज्ज	आरिय	आर्य
अहिगरण	अधिगरण	अधिकरण	आअअ	आगद	आगत
आअंपिअ	आकंपिय	आकम्पित	आअंब	आतंब	आताम्र
आएस	आदेस	आदेश	आआस	आगास / आयास	आकाश
आउत्त	आजुत्त / आगुत्त	आयुक्त / आगुप्त	आवस्सअ	आयस्सय / आवस्सग	आवश्यक
इइ	इदि	इति	इणिं	इयाणिं	इदानीम्
ईसा	इरिसा	ईर्ष्या	ईदिस	ईदिस	ईदृक्, ईदृश
उदअ	उदग	उदक	उउ	उदु	ऋतु
उड	पुड	पुट	उप्पायपुव्व	उप्पादपुव्व	उत्पादपूर्व
एअ	एग	एक	एअंत	एगत	एकान्त
ओइण्ण	ओदिण्ण	अवतीर्ण	ओअण	ओदण	ओदन
कइ	कदि	कति	कउह	ककुध	ककुद
कडुअ	कडुग	कटुक	करआ	करगा	करका(ओला)
कवलिअ	कवलिद	कवलित	कायंब	कादंब	कादम्ब
खेअ	खेद	खेद	खाइर	खादिर	खादिर
गइ	गदि	गति	खोह	खोभ	क्षोभ
गोआऊरी	गोदावरी	गोदावरी	गणअ	गणग	गणक
घओअ	घओद	घृतोद	गोअ	गोव	गोप
चउक्क	चदुक्क	चतुष्क	घायअ	घायग	घातक
चलिअ	चलिद	चलित			

छाउमत्थिअ	छादुमत्थिय	छाद्मस्थिक
जइ	जदि	यदि
णई	णदी	नदी
तइय	तदिय	तृतीय
दलिअ	दलिद	दलित
धअ	धव	धव (पति)
पइइ	पगइ	प्रकृति
फलअ	फलग	फलक
बउर	बदर	बदर
संजअ	संजद	संयत

चओर	चगोर	चकोर
चाय	चाग	त्याग
छेअण	छेदण	छेदन
जीअ	जीव	जीव
णट्टअ	णट्टग	नर्तक
तइअ	तदिय	तृतीय
दिआअर	दिवागर	दिवाकर
धुअ	धुव	ध्रुव
पयअ	पगय	{प्रकृत प्रगत
फुल्लअ	फुल्लग	फुल्लक
भिउर	भिदुर	भिदुर (विनश्वर)
हअ	हद	हत

ऊपर से दिये गये शब्द-रूपों के भेद से प्राकृत (महाराष्ट्री) और शौरसेनी का अन्तर स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जाता है। अब हम आ० कुन्दकुन्द रचित ग्रन्थों से कुछ प्रयोग उद्धृत करते हैं, जिससे कि पाठक दि० शौरसेनी की विशेषता से स्वयं परिचित हो जायेंगे।

समयसार से

प्रयोग	गाथांक	प्रयोग	गाथांक	प्रयोग	गाथांक
पदेसट्ठियं	२	विसंवादिणी	३	सुदपरिचिदाणुभूदा	४
जाणगो	७	जाणिदूण	१७	अणुचरिदव्वो	१८
भूदत्थ	२२	मोहिदमदी	२३	इदरं	२५
आदा	२६	जदि	२६	वंदिदो	२८
वंदिदो	२८	थुणदि	२९	कदा (कृता)	३०
थुदा (स्तुता)	३०	णादूणं	३४	एदे	५५
विज्जदे	५१	कोधादिसु	६९	कुणदि	७२
णादूण	७४	परिणमदि	७८	कुव्वदि (करोति)	८५
अविरदि	८८	आदा (आत्मा)	{९७, १०२	अप्पा, अत्ता	९४,९७, १०२
चेदा	११८	{बंधदि मुंचदि	१५०, २८१	णादव्वं	१५९
सव्वदो	१६०	विजाणादि	१६०	{जहण्णादो णाणगुणादो	१७१
{भुंजदि बज्झदि	१९५ १९६	आदम्मि	२०३	{छिज्जदु भिज्जदु	२०९

अधम्मस्स	२११	वेददि	२१६	विणस्सदे	२१६
पजहिदूण	२२३	आधाकम्मं	२८७	जिज्जदि	२०९

प्रवचनसार से

चंदिदं	१,१	संपज्जदि	१,९	{चरित्तादो पहाणादो	१,९
अंदिदिओ	१,१९	{जाणदि जाणादि	१,५५	{तध, तधा तधा	१,६७ १,६८
किध (कथं)	१,७२	{जहदि लहदि	१,८१	समधिदव्वं	१,८६

पंचास्तिकाय से

इंदसदवंदियाणं	१,	विज्जदि	१४५	चेदिय	१९६

षट्खण्डागमसूत्र—(छक्खंडागमसुत्त)

णाणाणि	१,१	इमाणि	१,१	अणियोगद्दाराणि	१,५
संजदासंजदा	१,१३	पमत्तसंजदा	१,१४	अप्पमत्तसंजदा	१,१५
ओदेसेण	१,२४	णिरयगदी आदि	१,२४	असंजदसम्मादिट्ठी	१,२७
छदुमत्था	१,२७	साधारणसरीरा	१,४१	सोधम्मीसाण	१,९६
पुरिसवेदा	१,१०१	चदुसु	१,१०५	भदिअण्णाणी	१,११६

इस प्रकार के प्रयोगों से सारा ग्रन्थ भरा हुआ है।

कसायपाहुडसुत्त की सारी गाथाएं शुद्ध शौरसेनी में ही रची हुई हैं। यहां पर हम केवल एक गाथा ही उदाहरणार्थ देते हैं—

गाहासदे असीदे अत्थे पण्णरसधा विहत्तम्मि ।
बोच्छामि सुत्तगाहा जयि गाहा जम्मि अत्थम्मि ॥२॥

रेखांकित तीनों पद स्पष्टतः शौरसेनी भाषा के परिचायक हैं।

उक्त ग्रन्थों के पश्चात् जितने भी मूलाचार, नियमसार, रयणसार, अष्टपाहुड, भगवती आराधना, दर्शनसार, तिलोयपण्णत्ती, भावसंग्रह, लब्धिसार, गोम्मटसार जीवकांड, कर्मकांड आदि प्राकृत दि० जैन ग्रन्थ हैं, वे सभी शौरसेनी में ही रचे गये हैं।

मैंने वसुनन्दि श्रावकाचार के परिशिष्ट नं० ५ में प्राकृत धातु रूप और परिशिष्ट नं० ६ में प्राकृत शब्द रूप संग्रह दिया है, उससे भी दि० ग्रन्थों की शौरसेनी भाषा को अपनाने की बात भली भांति सिद्ध होती है।

इस प्रकार शौरसेनी प्राकृत का मूल उद्गम भले ही उत्तरी मथुरा का समीपवर्ती प्रदेश रहा हो, परन्तु दक्षिणी यात्रियों के उत्तर भारत में आने से तथा

उत्तर प्रान्तीय भद्रबाहु के मुनि संघ के दक्षिण में जाने से यह भाषा वहां पर (दक्षिणी मदुरा तक) अच्छी तरह समझी और बोली जाने लगी थी। यही कारण है कि शेषगिरि राव जैसे अजैन दक्षिणी विद्वान् ने अपने लेख 'दी एज आफ् कुन्द-कुन्द' में लिखा है कि मेरे पास तमिल साहित्य में और लोक बोली में इस बात के अनेक प्रमाण हैं कि जिस प्रकार की प्राकृत में आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने ग्रन्थ निबद्ध किये हैं, वह केवल समझी ही नहीं जाती थी, बल्कि आन्ध्र और कलिंग प्रदेशों में जन-सामान्य के द्वारा बोली जाती थी। (जैन गजट, १८ अप्रैल सन् १९२२ पृ० ९१)

भाषा की दृष्टि से विचार करने पर यह कथन पूर्णरूपेण सत्य प्रतीत होता है।

आ० हेमचन्द्र ने संज्ञा शब्दों के जो सातों ही विभक्तियों में अनेक रूप दिये हैं, उनमें से शौरसेनी भाषा में कुछ सीमित ही रूप अपनाये हैं, जो कि संस्कृत के साथ बहुत अधिक साम्य रखते हैं। यथा—

प्राकृत	शौरसेनी	संस्कृत	प्राकृत	शौरसेनी	संस्कृत
ठाणाइं	ठाणाणि	स्थानानि	एए	एदे	एते
वच्छाओ	वच्छादो	वृक्षात्	अच्छीइं	अच्छीणि	अक्षीणि

इसी प्रकार महाराष्ट्री प्राकृत की अपेक्षा शौरसेनी के धातुरूप भी संस्कृत के बहुत अधिक समीप हैं। यथा—

प्राकृत	शौरसेनी	संस्कृत	प्राकृत	शौरसेनी	संस्कृत
भवइ	भवदि	भवति	गच्छई	गच्छदि	गच्छति
भवउ	भवदु	भवतु	गच्छउ	गच्छदु	गच्छतु

इस प्रकार जन-साधारण को सुगम होने से बहुजन-हिताय दि० जैनाचार्यों ने अपनी रचनाएं शौरसेनी प्राकृत में की हैं।